वितस्ता का तीसरा किनारा

महाराज कृष्ण सन्तोषी

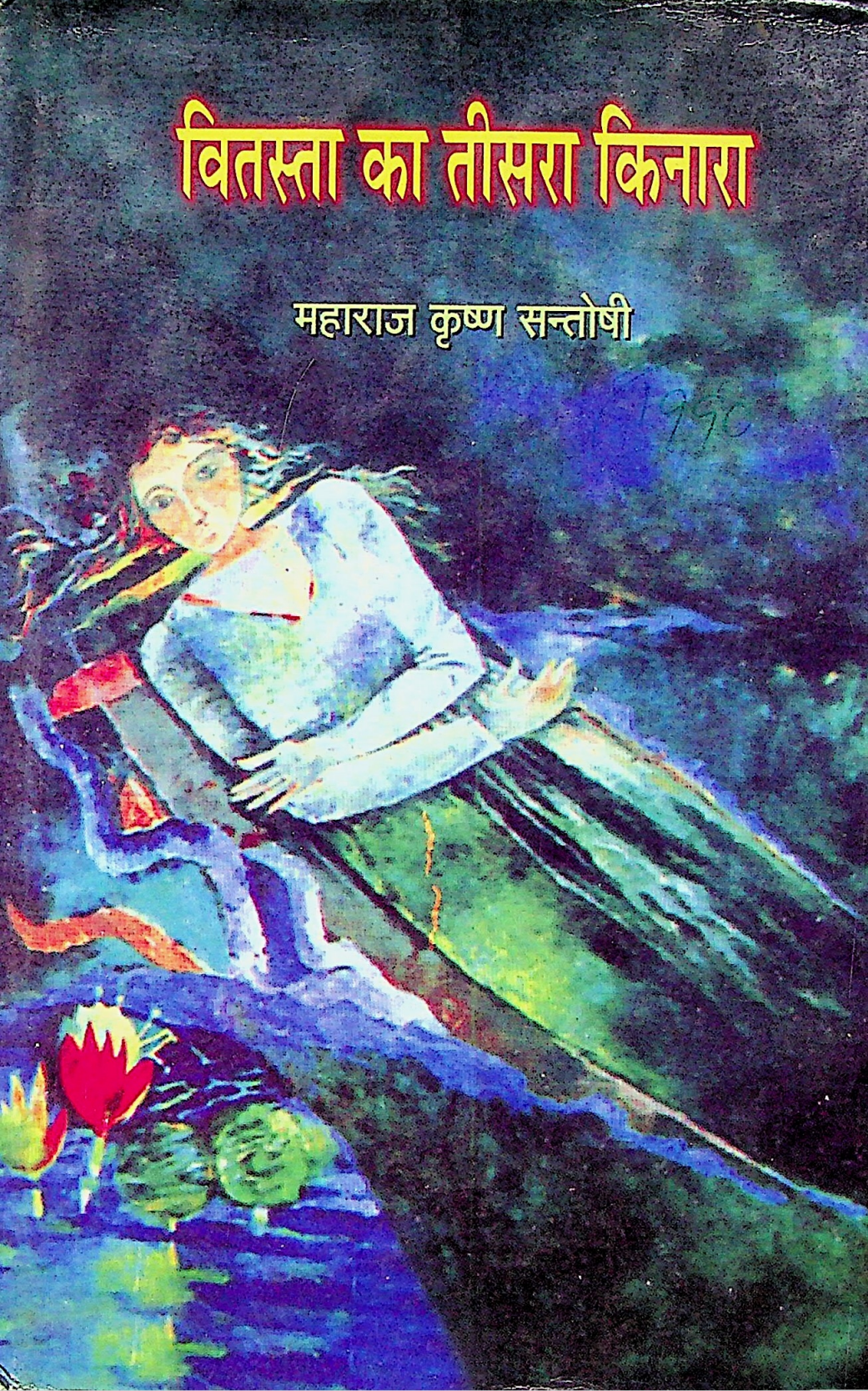

कश्मीर के सुपरिचित हिन्दी कवि श्री महाराज कृष्ण संतोषी का यह कविता-संग्रह विस्थापन के दर्द, संताप और संघर्ष की मार्मिक गाथा है। सम्भवतः पहली बार हिन्दी कविता में विस्थापन और शरणार्थी जीवन की त्रासदी महाराज कृष्ण संतोषी और अग्निशेखर सरीखे कवियों में इतनी व्यग्रता और विश्वसनीयता के साथ व्यक्त हुई है। और यह त्रासदी सम्पूर्ण भारतीय जीवन या कहें सम्पूर्ण मानवता की त्रासदी का सारांश बनकर संतोषी की इन कविताओं में उपस्थित है। 'जलावतनी का गीत' अपनी करुणा और दृढ़ता में सहसा फ़ैज़ और महमूद दरवेश की याद दिला जाता है।

घर की खोज आरम्भ से ही विश्व-कविता का एक केन्द्रीय रूपक रहा है। जब संतोषी कहते हैं—'कैसे रहूँ उस घर में जहाँ मतैं दिया जलाने से भी डरता हूँ'—तो एकबारगी वह आज के सम्पूर्ण भारतीय जीवन की असुरक्षा और उजड़ने की विवशता को भी वाणी दे रहे होते हैं। इसके साथ ही एक तल्ख़ स्वर उभरता है—

"उन्होंने हत्याएँ कीं/ पर हत्यारे नहीं कहाए/ कभी-कभी इतिहास/ हत्यारों का कितना मान बढ़ा देता है?"

इसीलिए संतोषी की कविता को समझने के लिए, उसके समुचित मूल्यांकन के लिए सम्पूर्ण भारतीय इतिहास और वर्तमान परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखना जरूरी है। संतोषी की कविता आपको पीड़ितों का पक्ष लेने को बाध्य कर देती है।

- शेष फ्लैप 2 पर

प्रिय भाई और सहयोगी
विनोदजन शेट्ट के लिए

महादेव देसाई

शारदा पुस्तकालय
(पत्रावना श्री. द. केंद्र)
क्रमांक 1990

वितस्ता का तीसरा किनारा

महाराज कृष्ण संतोषी

वितस्ता का तीसरा किनारा

महाराज कृष्ण संतोषी

अनामिका प्रकाशन
52, तुलारामबाग, इलाहाबाद

ISBN : 81-87770-23-6

प्रकाशक : अनामिका प्रकाशन
52, तुलारामबाग, इलाहाबाद-211003

प्रथम संस्करण : 2005

© : लेखक

आवरण : भूषण कौल

अक्षर संयोजन : मानस कम्प्यूटर्स, इलाहाबाद

मुद्रक : प्रभात प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद

मूल्य : रु. 150.00

स्वर्गीय पिता
पंडित अर्जुन नाथ खार
की स्मृति को समर्पित

सिलसिला

प्रार्थना : 11
कुफ्र : 12
झूठ : 14
चुप्पी : 15
अयोध्या : 16
धर्म के खिलाफ... : 17
मुझे ऐसा एक घर... : 18
मैं क्या था : 19
दरिद्रता के खिलाफ : 20
बिल्लियाँ : 21
कला समीक्षक : 23
पिता के लिए : 24
कला का अंतिम क्षण : 25
हे चिनार! : 26
उजले कपड़ों का गीत : 27
जीवन एक अधूरी... : 28
अकेलापन-1 : 29
अकेलापन-2 : 30
संवाद : 31
किनारे किनारे : 32
प्रश्न : 33
लेह में सिन्धु नदी... : 34
आवारा नाव : 35
काग संवाद : 36
बच्चे माँ-बाप के... : 38
सांकल : 40
मृतक : 41
हरिद्वार : 42
फर्क : 44
अगली हत्या का डर : 45
दंगे : 46
आकाश से बादलों... : 48
कंगाल : 50
लोकतंत्र में पतंग : 51
कमल : 52
कोई मुझसे न छीने : 53
धन्यवाद : 54
भाषा : 55
घर स्त्री की कविता है : 56
सपने में साइकिल : 57
दरारें : 59
वही आवाज़ : 60
कविता और गणित : 61
एक पहाड़ी यात्रा... : 62
रंग : 64
बारिश के नाम चिट्ठी : 65
एक पुराना माऊथ... : 66
संग्रहालय : 67
गणतंत्र दिवस की... : 69
गोरखा : 71
एक अंग्रेज़ी फिल्म... : 72
प्रायश्चित : 74
पृथ्वी मेरा घर : 75
कराकुल्ली : 76

नियति : 77
उम्र का कागज़ : 78
जाड़े में एक प्रेम... : 79
वे दिन कितने... : 81
मैं तोते के बारे में... : 83
मैंने देखी है : 85
हम में से ही कोई : 86
स्वीकारोक्तियाँ : 87
हम : 89
नीलनाग का दुःस्वपन : 90
डर ने हमें बनाया... : 94
जीवितों का संग्रहालय : 95
वहाँ सब यह कहते हैं : 97
डर : 98
जलावतनी का गीत : 99
एक बार गाँव लौट... : 101
हम वहाँ हैं : 103
बहुत दिनों बाद : 104
शांति प्रक्रिया : 105
वितस्ता बहती है... : 107
सेब के बारे में एक... : 108
फिरन : 109
बंदूक की नोंक पर... : 111
ऐसा क्यों होता है : 112
हम वे लोग है : 114
संग्रामपुरा हत्याकाण्ड : 116
यही तो दिक्कत है : 117
विस्थापित शिविर में... : 118
इतिहास का निर्णय : 122
वितस्ता का तीसरा... : 124

वितस्ता का तीसरा किनारा

प्रार्थना

घर था
प्रार्थना की तरह पावन

घर जला
प्रार्थना के ही कारण।

कुफ़्र

मुझे लगता है
जब कहीं कोई मंदिर बन जाता है
धरती पर
एक नया स्कूल खुल जाने की संभावना
मर जाती है

मुझे लगता है
जब कहीं कोई मसजिद घेरने लगती है
बहुत सारी जगह
कई ज़रूरतमंद लोगों के घर बनने से
रह जाते हैं

ओ ईश्वर
कहीं ऐसा न हो
तुम्हारी ही पृथ्वी पर
तुम्हारे ही कारण
बूढ़ों की सैर करने की जगह घट जाए
बच्चों के लिए
खेल के मैदान तंग पड़ जाए
प्रेम करने वाले
कहीं बात करना चाहें

तो पंडित मुल्लाओं के भय से
प्रेम करना ही भूल जाएँ

बता ईश्वर! बता खुदा!
तुम्हें अपने लिए
और कितनी जगह चाहिए?

झूठ

अपने ईश्वर के विषय में
हम फैलाते है झूठ तरह-तरह के

उस झूठ से बढ़ जाती है प्रतिष्ठा
हमारे ईश्वर की

ईश्वर से बड़ा है हमारा झूठ
जो हमें बचा लेता है
जब हम सच से डरने लगते हैं।

चुप्पी

जब देवता हमारे पास थे
तब हमें भरोसा था
वे हमारे साथ हैं

अब जब देवता
न हमारे पास हैं
न हमारे साथ

हमने बनाई उनकी अनुकृतियाँ
और विस्थापित बस्तियों में
प्रतिष्ठित किया

अब देवता हमारे पास भी हैं
हमारे साथ भी
पर अब वे बोलते नहीं हैं।

अयोध्या

वह मेरा ही सच था
रामचरितमानस में जो तुमने कहा
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ

वही अवधपुरी
अब मुझे भयभीत करने लगी है

आओ तुलसी
मैं और तुम
रामायण की कथा बदल दें

चौदह वर्ष के वनवास को
आजीवन वनवास बना दें
फिर लिख देना तुम
राम
अब अयोध्या कभी नहीं लौटेंगे।

धर्म के खिलाफ प्रार्थना

यह जीवन
जो मुझे पहले चकित करता था
अब भ्रमित करने लगा है

इस उम्र में
मुझे अब न जाना पड़े धर्म की शरण
प्रार्थना कीजिए।

मुझे ऐसा एक घर चाहिए

बरसों बाद
एक अच्छा सपना देखा
देखा सपने में एक बड़ा घर
अनगिनत खिड़कियों वाला

इस घर की
जितनी खिड़कियाँ थीं
उतने ही चाँद थे
और थे उतने ही आसमान नक्षत्रों भरे

मैं कुछ देर इस घर में रहा
और पुकारता रहा
मुझे ऐसा ही एक घर चाहिए
जो मेरी दृष्टि को विस्तार दे

बरसों बाद
एक अच्छा सपना देख कर लगा
इतिहास उनका है
जिनके सपने बड़े होते हैं।

मैं क्या था

मैं क्या था
जल की पतली-सी धार के सिवा
पर एक मछली की प्यास ने
मुझे दरिया बना दिया

वही मछली अब मुझे रोकना चाहती है
पर मेरी अपनी प्यास
मुझे बहा ले जा रही है
समंदर की ओर।

दरिद्रता के खिलाफ

दरिद्रता के खिलाफ है
मेरी यात्रा
इसलिए मैं पहले कुबेर बनूँगा
बाद में बुद्ध

कुबेर इच्छा है
जाने कहाँ कहाँ ले जाएगी
पाप की किन तलहटियों तक
पर मुझे विश्वास है
मुझसे दूर नहीं है बुद्ध भी

एक दिन जब सामने
बुद्ध होंगे
अनत होगा मेरा शीश
हाथों में नहीं होगा पुष्प भी
न ही होठों पर प्रार्थना

मैं कहूँगा बुद्ध से
ये लो मेरे पाप
इन्हें मैंने अर्जित किया है
तुम तक पहुँचने के लिए।

बिल्लियाँ

मेरे दोस्त का यह कहना है
बिल्लियाँ बड़ी मनहूस होती हैं

उसका यह कहना था
कि मुझे बिल्लियों में
मनहूस लोगों की शक्लें दिखायी देती हैं

बिल्लियाँ हमारे दुख में
हमारा साथ नहीं देतीं
वे हमारे सुख में भी खुश नहीं होतीं

उन्हें दिखते रहें
चारों तरफ चूहे
और दूध भरी कटोरियाँ
यही इनकी विचारधारा है

अचानक पालने में सोया बच्चा
चीख़ उठता है
अभी अभी कोई बिल्ली
उसकी आँखों में डाल गई है
अपनी छाया

इतिहास के पन्नों को फलाँगता

बाहर निकल आता है नेपोलियन
और रौबीली आवाज़ में कहने लगता है–
अरे लोगों!
बिल्लियों से बचा लेना अपने बच्चों को

बिल्लियों की ही वजह से तो
मैं हार गया युद्ध
जीवन का युद्ध।

कला समीक्षक

हरी सब्ज़ घास
और हमारे होने की
परवाह किए बिना
वह जो अभी-अभी थूक गया उस फूल पर
शहर का कला समीक्षक था।

पिता के लिए

मृत्यु
दीवार के पीछे खड़ी थी
और इतने वर्षों से सुन रही थी
पिता के हुक्के की गुड़गुड़

पिता जीवन भर माँगते रहे आग
कभी-कभी
वह अपनी चिलम के लिए
आकाश से तारे तक माँग लेते

हुक्के के घुटने में
काँपते जल और सिर में
जागते अंगारों के बीच
पिता जिए एक जीवन भरपूर

अब जब नहीं रहे पिता
लगता है
वह यहीं कहीं हैं
और हुक्का गुड़गुड़ाने के लिए
कोई गुप्त जगह चुन ली है।

कला का अंतिम क्षण

चित्र जिन पर टँगे थे
वे दीवारें सरकार की थीं
रंग और रेखाएँ प्रतीक्षा कर रही थी कि उन्हें
देखने खुद आएँगे मुख्यमंत्री

वे आए, सिंह की संतान
चित्रों को डूबते हुए देखते रहे
मुझे लगा कि वे ढूँढ़ रहे हैं इन चित्रों में
उस हिरण को जो उसे राजा होने का स्वाद देती है

कलाकार खुश था राजा से हाथ मिलाकर
सुबह वह दिखेगा शहर की खबरों के बीच
और उसकी अलबम में एक फोटो और जुड़ जाएगा

प्रदर्शनी से बाहर निकलते हुए पूछा हिन्दी कवि
मनोज शर्मा ने एक कमांडो से
सच बताना, क्या तुम कभी नहीं हँसते?
मैं उस वक्त घर जाने की जल्दी में था कहना भूल गया
कि जो बंदूक के ट्रिगर पर ही ऊँगली रखते हैं, वे कब हँस सकते हैं।

घर लौटते हुए कहा मैंने मनोज से
दोस्त! क्या कला का यही अंतिम क्षण होता है?

हे चिनार!

हे चिनार!
मेरे ध्यान में आ
कि मैंने बंद कर दी है ईश्वर की किताब

मैं कब तक दोहराता रहता
वही-वही शब्द
जिन्होंने मुझे बना दिया
किसी धर्म का अनुयायी मात्र!

मुझे यह क्या हुआ है
शोर को प्रार्थना
भिक्षावृत्ति को भक्ति मानने लगा हूँ

पोथी पढ़-पढ़ कर
शब्दों ने मुझमें अहंकार भर दिया है

हे चिनार!
मेरे ध्यान में आ
कि मैं तुम जैसा होना चाहता हूँ
विचार से नहीं
स्वभाव से धार्मिक बनना चाहता हूँ
जैसे तुम्हारी छाया।

उजले कपड़ों का गीत

मैं जो रोज़ उजले कपड़े पहनता हूँ
वह मेरा साहस है

उज्ज्वलता में मेरा वैसा ही विश्वास है
जैसे किसी सिपाही को अपने हथियार में

खाली खाली जेबों के सन्नाटे
और घबराए हुए से मन की उदासी के बीच
मैं जो रोज़ उजले कपड़े पहनता हूँ
वह मेरे बाजुओं की ताकत है
जो निचोड़ सकते हैं कितना भी मैल

मैल जीवन की हताशा है
उसे निचोड़ते रहें।

जीवन एक अधूरी रफ कापी

जीवन एक अधूरी रफ कापी
जो किया
सही गलत सब साथ साथ

जिस तरह किया
उसे क्या छिपाना
जब सामने बैठा हो काल

जीवन एक अधूरी रफ कापी
जिसके सब पन्ने
धागे से निकले हुए
फड़फड़ाते रहते हवा में
कुछ उड़ जाते
कुछ बिक जाते रद्दी में
कुछ कागज़ की नाव बन कर
बारिश में बह जाते

जीवन एक अधूरी रफ कापी
जिस पर जो लिखा सब अमिट
जहाँ कोई भी रबर
हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

अकेलापन-1

जब आदमी हो निपट अकेला
तो बहुत ज़रूरी है समय समय पर उसका खाँसना

वैसे कितना ही अच्छा होता
यदि खाँसने की अपेक्षा
वह अधूरे गीतों के मुखड़े ही गा लेता

और यदि वह न खाँसना चाहता है, न गीत गाना
फिर बेहद ज़रूरी है
उसके घर से
कुछ टूटने की ध्वनियाँ ही निकल आएँ बाहर...

कैसी विडम्बना है
सरोकारों के नाम पर
समाज की चिन्ता
और नगरपालिका का दायित्व
बस इतना-सा रह गया है
कि सड़ांध न फैले।

अकेलापन-2

जीवन की पहली चीख से
मृत्यु की अंतिम हिचकी तक
फैला यह अकेलापन
जब हमें बहुत डराने लगता है
तब हम खुद से ही
कितने दूर निकल आते हैं
और थाम लेते हैं
कोई विचार
कोई प्रतीक
कोई नाम
फिर कभी वापस
अपने तक लौट नहीं पाते

यही तो है जीवन की त्रासदी
कि सारी उम्र
हम लाँघ नहीं पाते
अपने आप तक का
थोड़ा-सा भी फासला।

संवाद

काठ का घोड़ा
और लोहे का शेर
दोनों थे पास पास

यदि वे दोनों
एक-दूसरे से कुछ बोल पाते
तो शेर यूँ कहता—
अरे काठ के घोड़े
घुस आया है तेरे भीतर कठफोड़वा
खबरदार!

तब घोड़ा भी उसे यह कहता
सुन हे वनराज—
ज़ंग लगी है
तुम्हारे लोहे की मूँछ पर
होशियार!

किनारे किनारे

दु:ख नहीं है
कि हम सुखी नहीं है

दु:ख नहीं है
कि हम सुखी नहीं होंगे

दु:ख है
कि जीवन भर
किनारे-किनारे चलते रहे हम।

प्रश्न

वह जिसने बनाया दरवाज़ा
डरपोक था

जिसने किया ईजाद ताला
सिपाही था

जिसने रखी चाभी अपने पास
शासक था

चोर बनाने में
बोलो
कौन अधिक उत्तरदायी है
डरपोक
सिपाही
या शासक?

लेह में सिन्धु नदी देख कर

(इकबाल खांडे के लिए)

हवा गवाह है
नदियाँ हमसे कुछ कहना चाहती हैं।

वे हमें उपदेश नहीं देना चाहतीं
नहीं कहना चाहतीं
व्रत उपवास रखो
या पढ़ो कोई धर्म ग्रन्थ

वे हमसे कहना चाहती हैं
इस पृथ्वी पर
हमें स्वीकार है परस्पर घुल-मिल जाना
और मित्रता का निमंत्रण लेकर
दुश्मन सरहदों के बीच से भी
फूल खिलाते हुए बह जाना

अपने कलकल स्वरों में
संसार की समस्त नदियाँ यही कहती रहती हैं
हमें सुनो...

पर यह कैसी त्रासदी है
इतिहास हर बार अनसुना कर देता है
नदियों का कहा।

आवारा नाव

हमने बुनी रस्सी
फिर उस रस्सी से पूछा
नदी में आवारा डोलती हमारी नाव को
तट से बाँध सकोगी?

हवा ने
सूँघी हमारी बात
वह नाव को और दूर ले गई।

पर हम बुनते ही रहे रस्सी
क्या पता
अब और कितनी दूर से
हमें खींच लानी होगी तट पर
वापस
अपनी नाव।

काग सम्वाद

कश्मीर में माघ पूर्णिमा को काग पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है। काग का जन्मदिन मनाने की यह प्रथा अभूतपूव है। इसी पर्व को समर्पित यह कविता।

काग!
तुम नहीं आए कल
नहीं पिया जल
खाया अन्न
पूरा दिन
सूना सूना रहा हमारा आंगन

कहाँ उड़ गए थे

हमने पूछा
आंगन के सारे फूलों से
काग क्यों नहीं आए कई दिनों से

बोले फूल
उनका क्या भरोसा
कहीं उन्हें मिला होगा
कोई टुकड़ा मांस
और वहीं रह लिए होंगे आसपास

पर हमें नहीं हुआ भरोसा

हम करते गए प्रतीक्षा
रखते गए काग पट्टी पर
अन्न और जल

आएँगे कभी वापस
तो उनसे ज़रूर पूछेंगे

क्या शुद्ध अन्न से ऊब गए हो
क्या स्वच्छ जल तुम्हें भाता नहीं

पर नहीं आए काग फिर कभी
और हम भी भूलते गए रखना आहिस्ता आहिस्ता
अन्न जल में से उनका हिस्सा

पर मेरे सपने में
जब से आया वह बूढ़ा काग
मेरी आत्मा सिहर उठी है
अब बार बार यही दोहराता रहता हूँ

कैसे आएँगे वहाँ काग
पियेंगे जल
खाएँगे अन्न
जहाँ हमने पाल रखी हों—
काली बिल्लियाँ।

बच्चे माँ-बाप के कंगाल दिनों से बहुत डरते हैं

बच्चे कहते हैं अब यह साइकिल पुरानी हो गई है
समय की तेज़ गति का सामना करने में बिल्कुल असमर्थ
मुझे लगता है वे साइकिल के साथ-साथ मेरे बारे में भी
कह रहे होते हैं

बच्चे की अनुपस्थिति में साइकिल के पास जाकर
मैं उसका सारा लोहा प्यार से छू लेता हूँ
और उदास मन उसे यह कहता हूँ
अब तुम्हें मेरे घर से विदा लेनी पड़ेगी
मुझे लगता है कोई उस समय मुझसे भी कह रहा होता है

बच्चे यह सोच कर साइकिल को बाहर खुले में ले आएँ हैं
कि प्रखर धूप और तेज़ बारिशों में बिना छत बाहर रहेगी
तो लोहे का सारा घमंड निकल जाएगा
मुझे लगता है बच्चे मेरा भी घमंड तोड़ना चाहते हैं

खिड़की के निकट दीवार के सहारे छोड़ गए हैं
बच्चे मेरी साइकिल
कभी-कभी अपने नन्हें पहियों से थोड़ा ऊपर उठकर
साइकिल मेरे कमरे में झाँकने लगती है
और मैं भी गर्व से उसकी तरफ देखता रहता हूँ

उस समय मैं अपने बच्चों से कहना चाहता हूँ
यह साइकिल मेरे संघर्ष की गवाह है पर डरता हूँ कहीं वे
इसी कारण बेच न दें इसे किसी कबाड़ी को

दरअसल बच्चे माँ-बाप के कंगाल दिनों से बहुत डरते हैं।

साँकल

मृत्यु
एक बड़ा दरवाज़ा

जीवन है
केवल छोटी-सी साँकल।

मृतक

जीवित उदास है और मृतक प्रसन्न

मृतक प्रसन्न है कि अब उन्हें
न भाषा की आवश्यकता है न विचार की
और न कोई जोखिम ही उठाना पड़ेगा

मृतक प्रसन्न है कि अब उन्हें
रोशनी की भी आवश्यकता न रही

केवल एक बात को लेकर उदास है मृतक
कि जीवित उनसे ईर्ष्या क्यों नहीं करते।

हरिद्वार

मृत्यु
जीवन है इस नगर का
पर विचित्र है
जो मरते है वे दूसरे ही होते हैं
कोई स्वयं के लिए
क्यों नहीं मरता इस नगर में

मुर्दों का स्वागत करता हुआ यह नगर
सुबह से शाम तक
मंत्रों का व्यापार करता है

पुलिस हो या पंडा
साधु हो या नाई
फोटोग्राफर अथवा भिखारी
कोई भी हो
यह नगर मुर्दों की दया पर टिका हुआ है

उत्सव की
यहाँ कोई कमी नहीं है
स्वर्ग से मिला हुआ है यह नगर
और सुख है मरना यहाँ
कोई पाप करके मरे

या पुण्य साथ लिए
कुछ अंतर नहीं पड़ता
जब तक
मुर्दों के नाम पर
खर्च होता रहेगा
इस नगर में पैसा।

फर्क

आदि मानव ने आग जलाई
और बस्तियाँ आबाद हो गईं

सभ्य मानव ने आग लगाई
और बस्तियाँ राख हो गईं।

अगली हत्या का डर

जीना है हमें पिछली हत्या भूल कर
पर अगली हत्या याद रखते हुए

यह मानते हुए कि
अगली हत्या का समय
अभी तय नहीं कर पा रहे हैं हत्यारे

आवो घड़ी की टिकटिक
और कलेण्डर की फड़फड़ाहट के बीच
मृत्यु को भूलते हुए जीने की कोशिश करें

सम्भव है हमारे जीने के मनोबल से
डर जाएँ हत्यारे
और अगली हत्या हो ही नहीं।

दंगे

1

इतने सारे शव बनेंगे गवाह
किनके हक में किनके खिलाफ
इससे हमें क्या

हम इतिहासकार नहीं
प्रेस फोटोग्राफर हैं।

2

उनकी स्मृतियों के आसपास
जब-जब धूल की आँधी उठेगी
माँ के आँचल लहराएँगे
फिर कुछ देर आँखें बरसेंगी
और पत्थर में छेद हो जाएँगे।

3

ये शव नहीं
उनके लिए सीढ़ियाँ हैं
जब तक ज़िन्दा थे
डर था

उनकी साँस साँस से

अब इतिहास के नमूने हैं।

4

कभी कभी
कब्रिस्तान का सन्नाटा
और मरघट से उठता धुवाँ
एक-दूसरे से पूछते हैं
जो मरते हैं
उनके लिए
कोई क्यों नहीं कहता
इंसान मरा।

आकाश से बादलों ने शहर को देखा

आकाश से बादलों ने शहर को देखा
उन्हें सिर्फ एक लहराता हुआ बाज़ार
दिखाई दिया
बाज़ार के बीच ही
उन्हें दिखाए दिए
उछलती हुई मुद्राओं के कोलाहल में
घर मंदिर स्कूल और कलाभवन
यहाँ तक कि व्यापार करते मरघट भी

बादल थोड़ा और झुके
उन्हें लोग बहुत छोटे दिखाई दिए
जो अपने कद से भी छोटी जगह में रहते हुए
एक-दूसरे की आत्मा कुतर रहे होते हैं

बादल इस शहर की खिड़कियों से
बेहद नाराज़ हुए
जो आकाश देखने के लिए नहीं
कचरा फेंकने के लिए खुलती हैं

बादलों ने
अपनी नन्हीं बूँदों के साथ

शहर से दूर
पत्थरों से टकरा कर आत्महत्या की

तब से इस शहर में सूखा है
जो बाहर कम और भीतर ज्यादा है।

कंगाल

कुछ आँसू हैं
और
एक कागज़ की नाव

मैं अभी
कंगाल नहीं हूँ।

लोकतंत्र में पतंग

जिसने कहा
कटी पतंग
कवि हुआ

जिसने कहा
काटी पतंग
मंत्री बना

जिसने यहाँ
लूटी पतंग
अफसर बना

जिसने यहाँ
चाही पतंग
वोटर बना।

कमल

मैं नहीं होना चाहता था
किसी ध्वज का प्रतीक।

ईश्वर का प्रिय फूल होने में ही
अपार सुख निहित था मेरा
अब मैं वह फूल हूँ
जो मतदाताओं के मुहर की
प्रतीक्षा करता है

हे ईश्वर!
अब तुम अपने लिए
कोई और फूल चुन लो।

कोई मुझसे न छीने

मैं जब बहुत थक जाता हूँ
किसी बड़ी नदी के बारे में सोचने लगता हूँ

होता हूँ उदास तो आँखों में
अनगिनत फूलों की छवियाँ लाता हूँ
और जब निराशा
मुझसे छीनने लगती है जीवन की चाह
मैं किसी ऊँचे पहाड़ का ध्यान करता हूँ

कोई मुझसे न छीने
मेरी नदियाँ
मेरे फूल
मेरे पहाड़!

धन्यवाद

हमें आभार मानना चाहिए
मुर्दों का

वे न मरते
तो हम इतने सारे
कैसे मिलते नदी के घाट पर!

एक दिन के लिए ही सही
पर मुर्दों की ही मार्फत
बची है हममें
थोड़ी सी सम्वेदना
और इंसान होने की तमीज़

धन्यवाद तुम्हारा
मुर्दों!

भाषा

भाषा दु:ख को ज़िन्दा रखती है
क्योंकि दु:ख से ही अपनी शक्ति लेती है भाषा

दु:ख से लड़ना भाषा से भी लड़ना है
पर दु:ख से लड़ें ही क्यों
दु:ख तभी होता है
जब हम उसके लिए
द्वार होना बंद कर देते हैं

पर द्वार बनना भी
सरल कहाँ है इतना
उसके लिए
पहले अव्यक्तिक बनना पड़ता है
जो मैं हो नहीं पाता

कभी-कभी मुझे लगता है
मेरा दु:ख मेरी भाषा में नहीं है
तब भाषा ही मेरा दु:ख बन जाती है।

घर स्त्री की कविता है

घर स्त्री की कविता है
पुरुष इस कविता का कागज़
आँगन हाशिया
बच्चे शब्द
प्रेम छंद
और सपने प्रेरणा

घर स्त्री की कविता है
जिसमें पृथ्वी सिमट जाती है
और आकाश अपना विस्तार भूल जाता है

जिसमें धूल है
आग है
भँवर है
पर जहाँ सूर्य
कुछ देर के लिए
अपनी छाया से मिलने का
सुख पाता है

घर स्त्री की कविता है।

सपने में साइकिल

बचपन में
मेरी जो साइकिल चोरी हो गई थी
बरसों बाद उसे सपने में देखा
अपने ही घर के आँगन में
वैसी ही दशा में
जैसे तब थी जब मैं उस पर सवार होकर
राजकुमार-सा अनुभव करता था

बरसों बा८
सपने में ही सही
मुझे मिली थी ऐसी कोई खुशी

सुबह सबसे कहा मैंने घर में
अपना यह सपना

बच्चों ने सुना तो हँस दिए
कहा पापा
कैसे जाएँगे हम तुम्हारी साइकिल पर अमेरिका

पत्नी मेरे सपने से हुई नाराज़
बोली
क्या इस उम्र में बैठ कर घूमूँगी

तुम्हारी साइकिल के कैरियर पर
सच तुम्हें कभी सपने देखने नहीं आए!

तब से कोई भी सपना
सुनाने से डरता हूँ
मैं अपने ही घर में।

दरारें

जब दीवारें
कद से ऊँची होने लगें
और अँधेरा
गहराने लगे भीतर
तब कितनी प्रिय हो जाती हैं दरारें।

वही आवाज़

उन्होंने
पेड़ ज़रूर गिराया
पर जुदा नहीं कर पाए
उसका साया

पेड़ जब धड़ाम से गिरा
पृथ्वी काँपी
और एक आवाज़ गूंजी—
अरे इस पेड़ के नीचे
कोई ऋषि तपस्या कर रहा था!

वे आए पेड़ के पास
उसे देखा
पत्ता-पत्ता छुवा
पर उन्हें कोई ऋषि दिखाई नहीं दिया
लेकिन वही आवाज फिर फिर कानों में गूँजती है
जब कोई पेड़ यहाँ कटता है!

अब क्या करें
पेड़ और ऋषि का यह रिश्ता
उन्हें कैसे समझाएँ
जिनके हाथ में कुल्हाड़ियाँ हैं!

कविता और गणित

गणित से नापा
तो जीवन दरिद्र लगा

कविता से नापा
तो जीवन समृद्ध लगा

गणित
बार-बार दोहराता रहा
कितना जुड़ा

कविता ने
हर बार यही पूछा
कुछ घटा!

एक पहाड़ी यात्रा से लौट कर

1

बड़े रास्तों पर बरसों चला
पर पहुँचा कहीं नहीं

तुम्हारी पगडंडियों पर
कुछ दिन क्या घूमा
ऊँचाई को नाप लिया।

2

जब दोस्त
बेहद बातूनी होने लगें
कितना सकून देता है
खिड़की से देखना बाहर
पहाड़ की तरफ

दरअसल
भाषा से घायल लोगों के लिए
ये पहाड़ ही एकमात्र विकल्प हैं।

3

यहाँ खिड़कियाँ

चाँद से बातें करती हैं

दरवाज़ों से गले मिलती है हरियाली
और पेड़ गुनगुनाते रहते हैं रात भर

शुक्र है इस पहाड़ी गाँव में
देर से पहुँचता है अखबार।

4

पहाड़ ने देखी
मेरे बैग में कुछ किताबें
और हँस दिया
सारे जंगल को अपनी हँसी में शामिल करता हुआ

पहाड़ ने देखा
मेरे सारे नोट
और हँस दिया तनहा

पहाड़ ने देखी
मेरी आत्मा में सक्रिय चालाकी
और भूल गया हँसना।

रंग

मुझे घृणा है
हर उस रंग से
जो धरती पर
धर्म का विज्ञापन लगता है।

बारिश के नाम चिठ्ठी

कुँवारी लड़की
दरवाज़े से देख रही है
बारिश को गिरते हुए

उसकी देह से उड़ रही है गंध बादलों तक
वह अपनी आँखों से लिखती है चिठ्ठी बारिश के नाम

बारिश थम जाने पर
वह धूप से माँगने लगती है
अपनी चिठ्ठी का जवाब

एक दिन बारिश ले गई
उसका कुँवारापन
और धूप ने प्रवेश किया
उसकी देह में बदलते मौसमों के साथ

अब एक चेहरा
रोज़ आता है उसके पास
और उसकी देह पर छोड़ जाता है अपनी परछाई

कभी कभी हवा की शरारत से
जब फडफडाता है कोई कोरा कागज़
उसे अपना कुँवारापन याद आता है
और वह उदास हो जाती है।

एक पुराना माऊथ ऑरगन बजाते हुए

कभी कभी
मुझे मिलता है कितना सकून
बुटे का वह पुराना माऊथ ऑरगन बजाते हुए
जिसके लिए मैंने उसे बचपन में बहुत पीटा था
यह सोचकर कि लोफर लड़के
इसे बजाते हैं लड़कियों के लिए

मैं आज बजाता हूँ वही पुराना माऊथ ऑरगन
जब नहीं आता बेटे का फोन
जब दोस्त करते हैं दोस्ती कम
जब बहनें रूठ जाती हैं
जब कोई पुराना प्यार याद आता है
जब जेब में पैसे नहीं होते
जब अपने घर की ढलान छत याद आती है

तब तब
खुद से कहता हूँ मैं
लो एक लोफर पिता
आज अपनी जिन्दगी को लुभा रहा है किस तरह?

संग्रहालय

1

संग्रहालय से बाहर निकलते ही
मुझे यह सोचना अच्छा लगता है
जिन्होंने लड़े युद्ध
हत्याएँ की
उजाड़े घर
मर कर
उन्हें भी ज़रूरत पड़ती है
एक आवास की।

2

अभी-अभी इतिहास का पन्ना फाड़ कर
बाहर निकल आएँगे बर्बर
और किसी भी क्षण
शहर पर हो सकता है आक्रमण!

आएँगे
सदियों बाद जब पुरातत्त्ववेत्ता
तो उन्हें उत्खनन में
एक जली हुई रोटी मिलेगी

पर क्या उस जली हुई रोटी के बारे में
इतिहास में कभी यह लिखा जाएगा
कि वह ऐसी आँच पर पक रही थी
जो किसी बर्बर से नहीं डरी

ताज्जुब है
दुनिया के किसी भी संग्रहालय में
वह जली हुई रोटी कहीं नहीं मिलेगी।

गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या

गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या
मैंने सपने में देखा
मैं जिस पुल पर खड़ा हूँ
वहाँ पुलिस का पहरा है
और मेरे अकस्मात डर जाने का यह कारण है
कि मेरी जेब में एक खत है उर्दू में लिखा हुआ

यह खत उस लड़की का है
जो मुझे बेपनाह चाहती है
और कभी-कभी मेरे हिन्दू होने से घबरा जाती है

उसके डर की छाया में
मुझे भी लगता है खतरनाक
उसके बारे में देखना तरह-तरह के ख्वाब

क्या पता
कब कौन कोई दयाशंकर कोई राहत अली
हमारे सामने खींच दे लकीर
और घोषणा कर दे
बस यहीं तक
आगे एक उबलती हुई नदी है

गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या
मैं जिस पुल पर खड़ा हूँ
उसके एक छोर पर दयाशंकर है
दूसरे पर राहत अली
और कैसे आश्चर्य की बात है
वे पुलिस को दिखाई नहीं देते।

गोरखा

बड़ी देर रात तक
मैं सुनता रहा
गोरखे के लाठी की ठक-ठक

कब सोया कुछ पता नहीं

मेरी नींद में देखा
उस गोरखे ने एक सपना
सपने में उसके पास
अपने परिवार के साथ सोने के लिए
एक पूरी रात थी।

एक अंग्रेज़ी फिल्म देख कर

पहले बजी सीटियाँ
और कुछ देर बजती ही रही

प्रतीक्षा में आतुर थे लोग
अभी बिल्कुल स्वच्छ था स्क्रीन
दर्पण की तरह
और नग्नता डिब्बे में बंद
जो बत्तियाँ बुझते ही फैल जाएगी
और पोंछ देगी
हर किसी के चेहरे से उसका धर्म

चुम्बनों से आरम्भ होगी नग्नता
फिर दिख जाएगी पूरी देह
वसंत से भरपूर पेड़ की तरह

हमारे जीवन की दरिद्रता पर
हँसेगा निर्देशक पूरी फिल्म में
और बजाता रहेगा अपने संगीतकार से
हमारे उपहास का संगीत

जब हम घर लौट आते हैं
कुछ जीवित साँकलें

तथा कलेंडर पर छपा ईश्वर
हमारी प्रतीक्षा कर रहे होते हैं

नींद से पहले
हमें फिर सुनाई देती है सीटियाँ
अभी भी हँस रहा होता है निर्देशक
बजा रहा होता है हमारे उपहास का संगीत

पर हम फिल्म भूल कर सिर्फ रोना चाहते हैं
क्योंकि दिन में धूल-सा बिछा हमारा जीवन
रात होते ही कीचड़ बनकर
हमारी आत्मा से लिपट जाता है।

प्रायश्चित

एक तरफ भाषा है
एक तरफ चुप्पी

भाषा से ही होकर
मैं पहुँचूँगा चुप्पी के पास

मेरी चुप्पी
मेरी भाषा का प्रायश्चित होगा!

पृथ्वी मेरा घर

घर से दूर नहीं
घर में ही सुरक्षित हो
मेरा एकांत

मुझे उस एकांत में
दिखे यह सारी पृथ्वी
अपने ही घर जैसी।

कराकुल्ली

जब बाज़ार में
ऊँचे दामों बिक रही हों कराकुल्ली टोपियाँ
तो कितने दिन अपनी खाल के बारे में
रहा जा सकता है निश्चिन्त
क्या पता इस बाजार में
कब किसकी खाल पसंद की जाए!

यह जानते हुए कि हत्याएँ
इन टोपियों की नैतिकता हो गई है
मैं पूछता हूँ
ऐ खुदा!
जिन टोपियों ने माँ की खाल उधेड़ ली
बाप को कत्ल किया
गर्भ में सोए बच्चे तक को
खंजर से चीर दिया
वे टोपियाँ तुम्हें क्या इतनी अच्छी लगती है
कि तेज़ हवाओं में भी
इन्हें धूल में गिरने से बचा लेते हो।

सच बताना ऐ खुदा!
इन टोपियों से
क्या तुम्हें कभी कोई बू नहीं आती!

नियति

स्त्री वह हिरण है
जिसकी नाभि में छिपी कस्तूरी
पुरुष को बधिक बना देती है

स्त्री मरती है अपनी गंध से
पुरुष मरता है अपनी थकान से।

उम्र का कागज़

उम्र का कागज़
फटा खींचतान में

यूँ बीता मेरा जीवन
जैसे खुद से ही हो कोई अनबन।

जाड़े में एक प्रेम कविता

जब हम एक-दूसरे से
विदा ले रहे थे
आकाश पर बर्फ-बादल एकत्र हो रहे थे!

मैंने तुमसे कहा
इस मौसम में
सिर्फ प्यार किया जा सकता है
या फिर आत्महत्या

तुमने कहा
सिर्फ प्यार क्यों नहीं?
सुन कर ऐसा लगा
जाड़े के इस मौसम में
किसी ने मेरे सामने
अलाव जला दिया

बर्फ-बादलों से भरे
आकाश के नीचे
जब हम एक दूसरे से
विदा ले रहे थे
यूँ लगा
पहाड़ों की बर्फ

नदियों का जल
समुद्र की लहरें
हमें देख कर कह रही हैं
प्यार—
चन्द्रमा का चुम्बन है
और इस चुम्बन की यात्रा
बर्फ से शुरू होती है।

वे दिन कितने अच्छे थे

वे दिन कितने अच्छे थे
जब हम कहते थे
अच्छे दिन आएँगे

वे दिन थे
कि धूप इतनी सूखी नहीं होती थी
न हीं साए इतने ठण्डे
कि धरती से उष्णता ही सोख ले
और न रातें इतनी उजली
कि रोशनी से डर पैदा हो

वे दिन थे
कि हवा में बर्फ की दस्तकें भी होती थीं
और घरों में
उदासी का कोहरा भी फैला होता था
पर हर लम्हा लगता था उन दिनों
हम अलाव के बिल्कुल पास हैं
और उष्णता की विपुलता में जी रहे हैं

हम जी रहे हैं
आज भी साथ-साथ
पर कितने अलग-अलग

दिन-रात ज़रूरत से ज्यादा
अपनी हैसियत में रहते हैं
इसीलिए अलाव जलाते नहीं
अलाव खरीदते हैं।

मैं तोते के बारे में सोचना नहीं चाहता

मैं तोते के बारे में बिल्कुल नहीं सोचना चाहता
पर हर समय उसे
अपने ही भीतर उपस्थित पाता हूँ

यह कमबख्त तोता चुगता रहता है
मेरी ही भाषा
मेरे ही विचार
मेरे ही साहसी भाव
और मेरी रीढ़ की हड्डी में जमा लोहा
ताकि न बोल सकूँ मैं
न रह सकूँ तनकर खड़ा
केवल दोहराता रहूँ
कुछ निरर्थक ध्वनियाँ

मैं जब कभी अपनी व्यथा में फड़फड़ाता हूँ
तो यह तोता मुझे
पालतू होने के फायदे समझाता है
और हर समय मुझसे कहता रहता है
इस दुनिया में कितना सुविधाजनक है
तोता बनकर जीवन बिताना

सोचता हूँ अभी तक मैं इतना जिया

इतना बल अर्जित किया
पर क्या अभी तक इस तोते को
मैं अपने अंतस से कहीं दूर भगा सका!

आईना देखता हूँ
सामने यही तोता
मुझे दिखाई देता है
और तब-तब मैं खुद से सवाल करता हूँ
मैं जो सुनता हूँ
क्या वही नहीं दोहराता हूँ
आईने में प्रतिबिंबित मेरी अदृश्य आत्मा
अकस्मात बोल पड़ती है
हाँ तुम हो
सिर्फ तुम्हारी नाक तोते जैसी नहीं है।

मैंने देखी है

मैंने देखी है
तुम्हारी आँखों में
सुबह की वह ओस
जिसके सम्मुख
एक पूरा पेड़
झुक झुक जाता है।

हम में से ही कोई

रोज़
हम में से ही कोई चला जाता है यूँ सहसा
जैसे कहीं छिप गया हो
जैसे फिर लौट आएगा
और नाराज़गी भरे स्वर में हमसे यह पूछेगा
इतनी जल्दी कोई किसी को
कैसे कर सकता है स्मृति से बाहर

रोज़
हम में से ही कोई चला जाता है
हमारे ही भीतर से होकर
पर हमें बिना छुए
कुछ भी कहे
बस हवा में अपनी अनुपस्थिति की लम्बी रेखा खींच कर

रोज़
हम में से ही कोई चला जाता है
जैसे कोई तस्वीर
कैनवस से उतर कर
लापता हो जाए।

स्वीकारोक्तियाँ

1

इन दिनों अक्सर
मैं प्रार्थना करना भूल जाता हूँ
पर अपनी इस भूल पर
मुझे कोई दुःख नहीं होता!

कभी-कभी मुझे लगता है
प्रार्थना करने से अधिक सुखकर है
अपनी मनपसंद चाय पीना
और भूले हुए अपने प्रेम प्रसंगों को याद करना।

2

मैं
दुःख में बेतहाशा
हँसने लगता हूँ
और सुख में हो जाता हूँ
बहुत उदास

हे ईश्वर!
मेरा हँसना ही मेरी प्रार्थना है।

3

मैं अपने सोचे हुए पापों के बीच
जी रहा हूँ

हे ईश्वर!
क्षमा करना मेरी कायरता
सचमुच मैंने ये पाप किए होते
तो अब तक मुक्त भी हुआ होता।

4

कुछ किताबें और औरतें
याद रहती हैं जीवन भर
हे ईश्वर!
मुझे पढ़ने को मिलती रहें अच्छी किताबें
और मेरे आस पास रहें ऐसी औरतें
जिन्हें चाहना प्रार्थना से कम नहीं।

हम

हम थे
जैसे बीज के भीतर
धरती की चाह

हम हैं
जैसे पानी पर
तेल की कुछ छींट

फैलना ही
हमारा मिट जाना है।

नीलनाग का दुःस्वप्न

1

हवा में
फड़फड़ा रहे हैं
नीलमत पुराण के पन्ने

शताब्दियों के बाद
किताब से बाहर निकल आया है
नीलनाग
नंगे पांव
यहाँ इस शिला तक
कुछ आहत कुछ विचारमग्न
किसी ने
उसे अपने रुदन से जगाया है

पता नहीं
वह कौन था
नाग या मानव
पर इससे क्या अंतर पड़ता है
रोने वाले की वेदना का नहीं होता
धर्म
जात
देश।

2

उदास है नीलनाग
जब से वह जागा है
और सोच रहा है
पल-पल ठंडाती शिला पर

जिन शिखरों को
ईश्वर ने नाम दिए थे
वे ही अब कितने अपवित्र हो गए हैं

उज्ज्वल बर्फ पर
ये किनके पाँव के निशान
मन में उत्पन्न करते हैं भय

ये कैसे काँच के टुकड़े
बिखरे है फूलों के बीच
जो लहूलुहान करते हैं
तितलियों के पंख

ये कैसी-कैसी आवाज़ें गूँजती हैं
जो धड़कते हुए दिलों को सहमा देती हैं
फिर ऐसा सन्नाटा
पसर आता है चारों ओर
कि बोलना अपराध लगता है

उदास है नीलनाग
कोई समीप भी नहीं
कि जिसे वह सुनाए अपनी व्यथा

3

अकस्मात जल काँपा वितस्ता का
और एक हताश छाया
डूब गई उसमें
पर किसी ने नहीं देखा
जल भी नहीं जान पाया वह क्यों काँपा

जाग रही थी जल में
उस समय केवल एक मछली

टूटा कश्यप का ध्यान
समाधि छोड़ आया वह पहाड़ से
वितस्ता के पास
बोला क्यों चीखी थी मेरे ध्यान में

कुछ नहीं कहा वितस्ता ने
हवा में उभरा केवल एक संकेत
चिंतित हुआ कश्यप
सोचने लगा
ये सब कैसे हुआ?

रात
उसे आया सपना
देखा
किसी ने उसके कमंडल में
मरी हुई मछली रख दी थी

जागा ऋषि
देखा अदृश्य हो गई थी मछली

और कमंडल में जल नहीं लहू भरा था

वह हुआ विस्मित
फिर लगा सोचने
यह हमारे किस अंत का प्रतीक है?

4

उदास है नीलनाग
टटोलता है
अपनी ही लिखी पुस्तक के पन्ने
सोचता है
क्या सचमुच मर गया था जलोद्भव!

नीलनाग : सतीसर मिथक का नायक।
कश्यप : कश्यप ऋषि जिनके नाम पर कश्मीर का नाम पड़ा।
जलोद्भव : सतीसार मिथक का दैत्य।

डर ने हमें बनाया सभ्य

सदियों के डर ने
हमें बनाया सभ्य

सभ्य बन कर
हम हुए जागरूक

हुए जागरूक
तो सपने देखना
हम से छूट गया

सपने छूट गए
तो उन सपनों के लिए लड़ना
हम भूल गए

कैसा अचरज है
भूलते-भूलते हम भूल गए कि क्या भूला?

जीवितों का संग्रहालय

वे जीवित हैं
पर लग रहा है
साँस लेते हुए ही
उन्हें किसी संग्रहालय में रख दिया गया हो
वे जहाँ खुश हैं अपनी सुरक्षा से

वे भविष्य का इतिहास हैं

जब-जब अपने होने से ऊब जाते हैं
हँसने लगते हैं आँखों में आँसू भरकर

उन्हें अच्छी तरह देख लो
उनकी दाढ़ी है
मूँछ है
उनकी औरतों के स्तन हैं
वे बोलते हैं
सुनते हैं
खामोश भी रहते हैं
कभी-कभी संग्रहालय के संतरियों से
घुल-मिल भी जाते हैं

उनके बच्चे हैं

सपने हैं
उम्मीदें हैं
वे अपना अपना आकाश नापना चाहते हैं

इस संग्रहालय में
मैं जब अपना वजूद टटोलता हूँ
तो किसी बड़े काँच के भीतर
स्वयं को कैद पाता हूँ

फिर भी मैं खुश हूँ
क्योंकि संग्रहालय में पल रहे बच्चे
जब कोई काँच तोड़ते हैं
तो लगता है
हमारी वापसी पर हस्ताक्षर हो गए।

वहाँ सब यह कहते हैं

वहाँ सब यह कहते हैं
अब पहाड़ तरसेंगे उजली बर्फ को
और झरने फूल हरियाली
स्मृतियों में ही दिखेंगे
स्वच्छ और निर्मल

वहाँ सब यह कहते हैं
धरती पर उगेंगे पेड़ अनगिनत
पर किसी को भी
उनसे छाया नहीं मिलेगी

वहाँ सब यह कहते हैं
रहिए एक-दूसरे से होशियार इन दिनों
कि रेत और हवा में हो गई है मित्रता।

डर

मटमैले आलोक में
अपनी वर्णमाला के अक्षर टटोलता हुआ
अचानक रुक जाता है बच्चा
और कहने लगता है
अब्बू!
तुम अब डरो मत
वे जब आएँगे
मैं उन्हें आईना दिखाऊँगा

कहते हैं
वे आईना देखने से बहुत डरते हैं।

जलावतनी का गीत

मैं पहनता हूँ
अपने ही देश के जूते
और यह कल्पना करता हूँ
अपनी धरती पर चल रहा हूँ

मुझे अच्छा लगता है
भटकना कुछ देर
पूछना हर एक से अपना खोया पता
ढूँढ़ना उनकी आँखों में
बीते दिनों की छवियाँ!

नदी हवा चिनार
किस-किस का प्यार
मुझे अपनी ओर नहीं खींचता
मैं चलता ही जाता हूँ दूर दूर तक

सुनता हूँ.....
माटी की खुशबू के गीत
और उन गीतों में छिपी
अपनी मातृभूमि की व्यथा!

सुनता हूँ

ढलान छतों से
बर्फ फिसलने की आवाज़ें!

मुझे अच्छा लगता है
चारों ओर फैली बर्फ पर
छोड़ते जाना अपने पाँव के निशान
और लौट आना घर बेहद थका

मैं पहनता हूँ
अपने ही देश के जूते
जो मुझे कहीं भी ले जा सकते हैं
सिर्फ वहाँ नहीं
जहाँ से हमें निकाला गया।

(मातृभूमि से निष्कासित भाइयों के लिए)

एक बार गाँव लौट कर

सूँघते ही मेरे पाँव की गंध
गली मुझसे लिपट गई
और रोते-रोते साथ मेरे
घर तक चली आई

दरवाज़े ने देखा
तो हर्ष में अपनी साँकल हिलाई
खिड़कियाँ
मुझसे बात करने
अपनी दीवारों से बाहर निकल आईं

सीढ़ियाँ
मेरे हर कदम के नीचे
मेरा चुम्बन ले रही थीं

दीवारों ने कहा
हम कच्ची ज़रूर हैं
पर हमारे स्पर्श में
मिट्टी की खुशबू है

छत ने देखा तो रो पड़ा
मेरी आत्मा के छिद्रों में

बर्फ और बारूद के बीच
सांसें लेता हुआ
मैं लौट आया था अपने घर
जहाँ अपने दादा के साथ बचपन में
मैंने तुलसी की चौपाइयाँ गाई थीं
जहाँ सन्ध्या होते ही
माँ दिया जलाती और कुछ बुदबुदाती

इतने बरसों बाद
फिर देखा मैंने वह दिया
पर कितना उदास और मलिन
याद करता हुआ वह दिन
जब पहली बार
उसकी लौ पर संदेह प्रकट किया गया

सोचता हूँ
मैं कैसे रहूँ फिर उस घर में
जहाँ मैं दिया जलाने से भी डरता हूँ।

हम वहाँ हैं

हम वहाँ हैं
जहाँ दिल दरवाज़े खिड़कियाँ
अब चौंकती नहीं हैं!

जहाँ हम अपनी ही जगह खड़े
कभी-कभी अपने पर संदेह करने लगते हैं

जहाँ आईना देखने पर लगता है
जैसे कोई अरूप छाया जासूस बनकर
हमें खुद से ही डराती है

जहाँ आप चाहे दस्तक दरवाज़े पर दे या दिल पर
कहीं से भी
किसी साँकल के खुलने की आवाज़ नहीं आती।

बहुत दिनों बाद

बहुत दिनों बाद
मैं गाँव गया

खुरची नाखूनों से वहाँ
आँगन की मिट्टी
देखा जो पहले नम हुआ करती थी
वही अब भीतर से कई पर्तों तक सूख गई है

बहुत देर मैं रोया
और मेरे आँसुओं से भीग गई सारी मिट्टी

मैं फेंक आया, वह सारी मिट्टी वहीं
पर शहर लौट कर भी यही लगता है
मेरे हाथों से अभी छूटी नहीं वह मिट्टी
उसमें जैसे किसी फूल के खिलने की चाह जगी हो!

उस समय मुझे यह लगता है
जैसे मेरे हाथ
दुनिया के सबसे खूबसूरत हाथ हैं
जो अपनी हथेली पर अनुभव कर रहे हैं
किसी फूल का खिलना।

शांति प्रक्रिया

उन्होंने हत्याएँ कीं
पर हत्यारे नहीं कहलाए
कभी-कभी इतिहास
हत्यारों का कितना मान बढ़ा देती है!

वे जिनसे जंगल की हरियाली
और नदी का जल काँप उठते हैं
वे ही आज अपने सफेद कबूतरों के साथ
पहाड़ से उतर आए हैं
उन्होंने पहना रखे हैं
अपने इन कबूतरों के गले में
हरे रंग के ताबीज!

ताबीजों में एक-एक सपना है उनका
खुदा द्वारा हस्ताक्षरित

कभी वे ले आते हैं सफेद कबूतरों को
अपनी हथेली पर
और कभी उन्हें बंदूकों के पीछे

छिपा लेते हैं!

मैं जब भी देखता हूँ इन सफेद कबूतरों को
तो डर जाता हूँ
कैसे न डरूँ
वे दूर दिखें या पास
लहू के छींटे
मेरे ही लिबास पर गिरा देते हैं।

वितस्ता बहती है आज भी

वितस्ता बहती है आज भी
पर उदास है देखकर उन पुलों को
जो न अब किनारों से जुड़े हैं न दिलों से
जो इतने कमज़ोर हैं
कि गिद्ध तो गिद्ध
किसी बुलबुल के साए से भी काँपने लगते हैं

वितस्ता बहती है आज भी
पर उदास है देखकर उन घरों को
जिनमें न कोई रोशनी ही जलती है, न प्रार्थना ही होती है
जिनमें सिर्फ रात को कभी-कभी
कुछ खुली हुई किताबों के पन्ने फड़फड़ाते हैं
और सन्नाटा सन्नाटे से टकराने लगता है

वितस्ता बहती है आज भी
पर उदास है देखकर अपने पानी का रंग।

सेब के बारे में एक कविता

हत्याओं के मौसम में
जब चारों ओर उछल रही थी
रक्त की छीटें
सेब पेड़ पर
अपने स्वाद का सपना देख रहा था

सपने में ही उसे अच्छा लगा अपना रंग
जब बाहर आया सेब सपने से
उसे लगा वह अपने मौसम में नहीं है

यहीं से आरम्भ हुआ सेब का संदेह
खुद पर
पेड़ पर
धरती बीज हवा पर।

अपने रंग और स्वाद से युक्त होकर भी
सेब आज उदास है
और सोच रहा है
यह कैसी आबोहवा पल रही है
मेरे वतन में
कि मुझे अपना ही स्वाद कड़वा लग रहा

फिरन

1

आजकल जो हमारे यहाँ
गिरती है बारिश
वह हमारे पुरखों के आँसू हैं

बादलों में छिपकर
रोते हैं मेरे पुरखे
जब देखते हैं–
वही पोशाक, जो कभी सूफी पहनते थे
आज अपने भीतर
हथियार छिपाते हैं
और अपने दामन में
लहू के दाग लेकर
खुदा को याद करते हैं।

2

बच्चे कहते हैं
पुरखों की इस पोशाक को
किसी संग्रहालय में होना चाहिए

उस समय मुझे यह लगता है
जैसे मेरी ही त्वचा
टाँग दी गई हो किसी कील पर

बच्चे कहते हैं
उन्हें पुरखों की इस पोशाक से
अतीत की बू आती है
जो उनके सपनों में
अंधेरे की तरह फैल जाता है

उस समय मुझे यह लगता है
जैसे ये बच्चे
मनीप्लांट के ऐसे पौधे हैं
जो अपनी जड़ें
बोतल में डालकर भी
संतुष्ट हो सकते हैं।

बंदूक की नोक पर बैठी चिड़िया

कुछ देर के लिए
बंदूक की नोक पर बैठी चिड़िया
और ऊनींदे सिपाही की आँखों में
डाल गई एक तिनका ओस भीगा

चिड़िया ने क्या देखा बंदूक से
कोई नहीं जानता
पर सिपाही को अब बंदूक से
केवल चिड़िया ही दिखाई देती है
जिसे वह अपने भीतर
चहचहाते हुए अनुभव करने लगता है

सोचता है सिपाही
कहीं उसकी मृत बेटी
चिड़िया बनकर तो नहीं आई थी!

अब हर बार
जब सिपाही ट्रिगर पर ऊँगली दबाता है
उसे अपनी बेटी की चीख सुनाई देती है
और वह काँप जाता है।

ऐसा क्यों होता है

जंगल मित्र था मेरे गाँव का
नदी थी प्रेमिका
बर्फ बहन
और माँ चिनार की छाया

वे जब आए तो सबसे पहले
मित्रता में झूमते पेड़ों को काट डाला
फिर किया लहूलुहान मेरी प्रेमिका को
यह देख सहम गई मेरी बर्फ-बहन
और डर के कारण
चिनार से उतर गई उसकी छाया

क्रूरता हवा में थी
और रोशनी गवाह बनने से
इंकार कर रही थी

अंधेरे में सोई पड़ी थी
मेरे इतिहास की किताब
कुछ थे जो उस अंधेरे में
इतिहास की सियाही बदलने की
कोशिश कर रहे थे!

नींद और जागरण के बीच
डोलता हुआ
मैं अपने भीतर इतिहास की बू लिए
अक्सर यह सोचता हूँ
ऐसा क्यों होता है
जब आदमी डरने लगता है
अपनी ही पगड़ी से
या अपनी ही दाढ़ी-मूँछ से
जैसे इस समय
मैं डर रहा हूँ अपने नाम से।

हम वे लोग है

हम वे लोग हैं
जिन पर नहीं रहा
अपने ही दरख्तों का साया

हमने तापी
धूप के आदेशों पर
यहाँ-वहाँ
अपनी ही परछाइयाँ।

हम वे लोग हैं
जिन्हें रात
एक ऐसे ताबूत में सुला देती है
जहाँ हमारी साँसें
स्मृतियाँ
सपने
चुप्पी का फटा हुआ कफन
ओढ़ लेती है
और एक बेजान-सी ठण्डी तनहाई
रातभर हम से लिपट जाती है!

इस ताबूत में
हमारे लिए बस इतनी-सी है सान्त्वना

कि हम करवट बदल सकते हैं
और सूँघ सकते हैं
उन फूलों को
जो हमारे आसपास महक रहे होते हैं।

संग्रामपुरा* हत्याकाण्ड

कल जो मेरे हमशक्लों की
हत्या की गई
उन सबकी मौत के साथ
रातभर जागा हूँ मैं
और सुबह उन्हीं हमशक्लों की मौत पर
बेतहासा हँसा भी हूँ
क्योंकि हत्याओं के बाद हत्यारे
चेहरे और कपड़े बदलकर
रोने वालों में शामिल हो गए हैं!

अब और क्या कहें
हत्यारों ने
मौत पर रोना भी
झूठा बना दिया।

* कश्मीर एक गाँव, जहाँ अल्पसंख्यकों का

यही तो दिक्कत है

एक लम्हा कि घर था यहाँ
एक लम्हा कि घर कहीं नहीं
इन्हीं दो लम्हों के बीच
फैला है हमारा सारा इतिहास।

जब घर था
तो इतिहास से ओझल थी आँख
जब घर नहीं है
मैं ढूँढ़ रहा हूँ
इतिहास में अपना घर

यही तो दिक्कत है
इतिहास से बाहर आकर
सोचा ही नहीं
मैंने अपने भूगोल के बारे में।

विस्थापित शिविर में एक गूँगी लड़की

1

घाटी के पिशाच से
डर कर भाग आई
हज़ारों के साथ एक गूँगी लड़की

उसके अंकुराते सीने में
अथाह दर्द था
जिन्हें वह आँसुओं में बह जाने देती थी

भागने से पहले तक
एक नदी थी गूँगी लड़की की
दुश्मन सरहदों के बीच से बहते हुए भी
जो उसे नीले समंदर की लहरों के साथ जोड़ देती थी

पहाड़ थे गूँगी लड़की के
जिन पर वह देवताओं का प्रणय देखा करती थी
गूँगी लड़की के मनपसंद पेड़ थे फूल थे आस्था की पुकार सुनते हुए
रंग और बू थी अपनापे की
लय बुनती हवा थी

गूँगी लड़की की एक नहीं अनेक सहेलियाँ थीं
साजिदा

ताहिरा
मुद्दसर
गुलबदन
कितनों के नाम लें हम!

अपनी इन मनपसंद सहेलियों के साथ
भागने से पहले तक हँस रही थी
गूँगी लड़की।

2

घाटी के पिशाच से
डर कर भाग आई
हज़ारों के साथ
एक गूँगी लड़की

माता-पिता
भाई-बहन
एक ही तम्बू के भीतर
धीरे-धीरे सिकोड़ने लगे अपना कद

गूँगी लड़की की भाषाहीन व्यथा को
हर रात सुनने लगा पूरा तारामंडल

विस्थापन की नंगी धूप में
एक पिता अकेला खड़ा
अपने भीतर से निकालने की कोशिश करने लगा
अपने बच्चों के लिए एक छतनार चिनार

वात्सल्य के प्रकाश में
गूँगी लड़की
अपने पिता की झुर्रियों में
देखने लगती है
आने वाले दिनों के खतरनाक संकेत

निचोड़े गए नींबू जैसे पिता की आँखों में
झाँक कर
उसे प्यास का समंदर दिखाई देता है

धूप से आहत
तारकोल पुती सड़कों पर
अपने पिता के साथ चलते हुए
गूँगी लड़की
अपने भीतर की बर्फ-शक्लें
बचाने की कोशिश कर रही है
यही बर्फ-शक्लें
उसकी उम्मीद का आधार है

रात के पिघलते लम्हों में
गूँगी लड़की
खोल देती है अपना वक्ष
उस एक तारे के लिए
जो उसकी धरती पर कभी नहीं आएगा

जानती है वह
एक दिन उसके प्रेम का यह आधार भी
खिसक जाएगा
और अकेलेपन का झरना

उसे सुनाता रहेगा
चट्टानों पर गिरते पानी का नाद

एक दिन नहीं रहेंगे पिता
रोज़गार के पहिये से बँधा भाई
पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकेगा
प्रतीक्षा से ऊबकर बहन भी चली जाएगी
और अपनी नियति के साथ अकेले रह जाएगी
गूंगी लड़की
यह सोचते हुए कि एक अनाम नदी की तरह वह कहीं गुम न हो जाए?

इसी डर की आबोहवा में साँसें लेती हुई
एक दिन वह आग में तपाए चाकू से
छील देती है अपनी गोरी बाँह पर
छूट गए अपने वतन का नाम
अपनी पहचान के लिए

विस्थापन से पहले
सेबों की टहनी थी गूँगी लड़की।

इतिहास का निर्णय

चिनार!
कल रात मेरे सपने में
आ गिरा तुम्हारा एक सुर्ख पत्ता
और कुछ देर के लिए मुझे लगा
मैं अपनी आबोहवा में लौट आया हूँ

मैं जानता हूँ चिनार!
जबकि तुम्हारी छाँह पर
नहीं किसी का भी एकाधिकार
फिर क्यों तुम्हारी छाँह में पलने वाला मैं
आज नंगा सिर लिए घूम रहा हूँ?

तुम जहाँ हो
वहाँ आज मैं क्यों नहीं हूँ
और जहाँ हूँ
वहाँ क्या मैं होना चाहता था?

इतने वर्ष बीत गए चिनार,
क्या तुम ने कभी उन्हें टोका
जो तुम्हारी छाँह के अकेले वारिस बनकर
इतिहास के लाडले पुत्रों की तरह
जीना चाहते हैं

कभी उन्हें कहा
जाओ, उन्हें वापस लाओ!

चिनार!
तुम नहीं हो मुगलों की ऐयाशी के प्रतीक
तुम हो मेरी संस्कृति के मूलाधार
मेरे इतिहास वृक्ष!

नहीं जानता मैं
वह इतिहास था या कविता
जिसे हम पहले भूले
(शायद दोनों ही साथ-साथ भूले)
जितना भूलते गए
उतना डरते भी गए
और यहाँ-वहाँ-जहाँ मिली सुरक्षा
वहां के हो गए
यह जाने बिना कि
इतिहास उन्हें बिखराकर मिटा देता है
जिन्हें सिर्फ सुरक्षा की चाह होती है

जिनके पास न कोई संकल्प है
न कोई संघर्ष भाषा
इतिहास हँसता है उन पर
और कभी क्षमा नहीं करता।

वितस्ता का तीसरा किनारा

उन्होंने रेत पर बनाए घर
और पीछे छूट गई नदी की याद में
बनाई कागज़ की कश्तियाँ!

वे कहते हैं
इतिहास साक्षी है
हमने पा लिया
जीने का हुनर
आखिर
हमने ढूँढ़ ही लिया
वितस्ता का तीसरा किनारा।

लेकिन संतोषी की कविताएँ उस पुराने घर और संसार के सौंदर्य को भी उसी हुलास से अंकित करती हैं। इन कविताओं में कश्मीर का सौंदर्य बिल्कुल अछूते बिम्बों और स्वर-लहरियों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। यहाँ 'हवा में बर्फ की दस्तकें', 'ढलान छतों से बर्फ पिघलने की आवाजें हैं' और चिनार की गम्भीर छायाएँ। एक छूटे हुए घर की याद समूची पृथ्वी को घर बना लेने की लालसा में बदल जाती है—'यह सारी पृथ्वी अपने ही घर जैसी'। और इस संश्लिष्ट अनुभव-लोक को अद्‌भुत संकेन्द्रण के साथ व्यक्त करती है। यह छोटी-सी कविता—

मैं क्या था / जल की पतली धार के सिवा / पर एक मछली की प्यास ने / मुझे दरिया बना दिया। / वही मछली अब मुझे रोकना चाहती है / पर मेरी अपनी प्यास / मुझे बहा ले जा रही है / समंदर की ओर

महाराज कृष्ण संतोषी का यह संग्रह समकालीन हिन्दी कविता में एक सर्वथा नये, पृथक् स्वर की खोज तथा अपने जीवट और ऐंद्रिकता के लिए रेखांकित किया जाएगा। वितस्ता के दोनों किनारों को खो चुका मनुष्य जहाँ भी जाएगा, आखिर ढूँढ़ ही लेगा 'वितस्ता का तीसरा किनारा'। क्या कविता भी वही तीसरा किनारा नहीं है? और संतोषी की कविता भी?

अरुण कमल

आवरण चित्र : भूषण कौल

महाराज कृष्ण संतोषी

जन्म : सन् 15.06.1954 (कश्मीर) में।

शिक्षा: पंजाब विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए.।

विधिवत काव्यलेखन सन् 1975 के आस-पास शुरू किया।

पहला कविता संग्रह 'इस बार शायद' 1980 में प्रकाशित।

'पहल', 'साक्षात्कार', समकालीन भारतीय साहित्य, वर्तमान साहित्य, हंस, कथादेश, जनसत्ता सहित देश की लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ तथा कहानियाँ प्रकाशित।

कुछ रचनाओं के अनुवाद अंग्रेज़ी, पंजाबी, बंगाली तथा कश्मीरी में।

प्रमुख कश्मीरी कवियों की प्रतिनिधि कविताओं के हिन्दी में अनुवाद।

प्रकाशित कृतियाँ

काव्य : 1. इस बार शायद (1980), 2. बर्फ़ पर नंगे पांव (1993, पुरस्कृत), 3. यह समय कविता का नहीं (1996)

कहानियाँ: 'हमारे ईश्वर को तैरना नहीं आता' (प्रकाशनाधीन)।

विगत 15 वर्षों से जम्मू में शरणार्थी जीवन जीने को बाध्य। सम्प्रति : सरकारी नौकरी

सम्पर्क : 113-ए/4, आनंद नगर, बोड़ी पट्टा,
तालाब - तिल्लो, जम्मू-तवी (180002)।